अङ्क-२७
जनवरी-जून २०१६

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

अथर्ववेद में प्राकृतिकचिकित्सा-विज्ञान

डॉ. कैलाशनाथ तिवारी

प्राकृतिक-चिकित्सा का तात्पर्य प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के माध्यम से सदाचार द्वारा रोगों का उपचार करना है। सूर्य, जल, वायु, अग्नि तथा भूमि ये प्राकृतिक शक्तियाँ हैं। इन दिव्य शक्तियों का मानव-शरीर की जीवन-क्रियाओं पर सीधा प्रभाव होता है। इनमें रोग-निवारण की आश्चर्यजनक क्षमता होती है। सामान्य-रूप से यह विश्वास किया जाता है कि प्राकृतिक उपचार अत्यन्त प्राचीन और निरापद है और सभी के लिए सामान्य-रूप से सुलभ प्रकृति का आरोग्य के लिए अनुपम वरदान है।

सूर्य सृष्टि का आधार और जगत् की आत्मा है, जिससे यह सम्पूर्ण संसार जीवन धारण किये हुए है। सूर्य का सम्बन्ध शरीरगत वात-पित्त तथा कफ से भी है। अथर्ववेद कहता है-

स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रूजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे।[१]

अर्थात् एक सरल मार्ग पर चलने वाला सूर्य जो एक अपनी शक्ति से वात, पित्त व श्लेष्मा-रूप दोषत्रय का रचयिता बनकर सर्वत्र व्याप्त होता है।वह रोगों को नष्ट करता हुआ हमारे शरीर के लिए सुखदायी हो। आचार्यसायण ने भी अपने भाष्य में **वातपित्तश्लेष्मलक्षणदोषत्रयकारिदेवतात्मना सर्वत्र अयमेव वर्तत इत्यर्थः । अतः सूर्यप्रार्थनया दोषत्रयोद्भूतस्य रोगजातस्य निवृत्तिरूप्पना।**[२] लिखा है जिससे सूर्य के त्रिदोषजनकत्व की पुष्टि होती है। आगे इसी सूक्त में शरीर की सन्धियों को जकड़ने वाले रोग की निवृत्ति के लिए हवन द्वारा सूर्योपासना के साथ-साथ सूर्यनमस्कार करने का भी उल्लेख है।[३] हृदयरोग तथा कामला-रोग के उपचार हेतु अथर्ववेद कहता है **'अनुसूर्यमुदयतां हृदद्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि।**[४] अर्थात् हे रोगी ! तेरे हृदय में जलन या पीड़ा-शूल देने वाला हृदय-रोग और हलीमक-पाण्डु-कामला-रोग सूर्य के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाए। अतः रक्तवर्ण के उदयकालिक सूर्य की लाल रश्मियों से तुझे आवृत करते हैं। वेदभाष्यकार सातवलेकर ने भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार उक्त रोगों के लिए लाल रंग की सूर्य-किरणों से चिकित्सा

---

[१] अथर्ववेद १.१२.१

[२] उक्त पर सायणभाष्य

[३] अङ्गे-अङ्गे शोचिषाशिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
अंकान्त्संमंकान्हविषा विधेम यो अग्रभीत्पर्वास्या ग्रभीता ॥ अथर्ववेद १.१२.२

[४] अथर्ववेद १.२२.१ व २

होती है। उसी प्रकार अन्यान्य रोगों के लिए अन्य-अन्य रंग की सूर्य-किरणों से उपचार होना सम्भव है।[५] गण्डमाला नामक रोग की चिकित्सा का निर्देश करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है-

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥[६]

अर्थात् हे अपक्व गण्डमालाग्रन्थियो ! जैसे वेगवान् बाज अपने घोंसलों से उड़ जाता है उसी प्रकार तुम भी इस रोगी के कण्ठ से दूर हो जाओ। सूर्य तुम्हारी चिकित्सा करे और चन्द्रमा तुम्हें दूर हटावे। इस पर टिप्पणी करते हुए पं. प्रियरत्न आर्ष लिखते हैं कि सूर्य-ताप में दूध, जल एवम् अन्य भोज्य पदार्थ रखकर खाना-पीना और सेवन करना चाहिए। इससे रक्त की शुद्धि होगी और रक्त में मिला गण्डमाला-ग्रन्थियों का विष नष्ट हो जायेगा। चन्द्रमा की चाँदनी में रात भर जल तथा लेप आदि रखकर प्रक्षालन, लेपन करना चाहिए। इससे गण्डमाला की जलन दूर होगी और गण्डमालाओं के विष बढ़ न सकेंगे।[७] सूर्य की रश्मियों के द्वारा मुमूर्षु रोगी के मृत्यु से मुक्त होने का सङ्केत करते हुए अथर्ववेद कहता है -

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥[८]

अर्थात् तेरा प्राण क्षीण न हो। तेरा अपान भी कभी रुके नहीं। संसार का अधिपति सूर्य किरणों के द्वारा तुझे मृत्यु से उबार ले। अन्यत्र उदित होते हुए सूर्य की रश्मियाँ सिर, कपाल तथा हृदय की पीड़ा एवं सभी अङ्गों में टूटन का अनुभव कराने वाले दर्द का शमन करने वाली बताई गई हैं।[९] इसी प्रकार एक मन्त्र में सूर्य की किरणों से कास (खाँसी) दूर होने का सङ्केत है।[१०] यहाँ कास-रोग के नाश के लिए कौशिकसूत्र तथा सायण ने सूर्योपस्थान का विधान किया है।[११] सूर्य के उदय होने पर उसकी धूप से सूक्ष्म विषाणुओं एवं क्रिमियों का नाश हो जाता है। मन्त्र कहता है –

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा' ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन क्रिमीन्' ॥ तथा च -
उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि।[१२]

---

[५] सातवलेकर, अथर्ववेद सुबोधभाष्य, भाग-१, काण्ड-१, पृ०६६ पर देखें टिप्पणी सूर्यकिरण-चिकित्सा।

[६] अथर्ववेद ६.८३.१

[७] पं. प्रियरत्न आर्ष, अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, पृ० ७२ पूर्वोक्त

[८] अथर्ववेद ५.३०.१५

[९] सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः । (अथर्ववेद ९.८.२२)

[१०] यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् । एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥ (अथर्ववेद ६.१०५.३)

[११] यथा मनो मनस्केतै इति तृचेन सूर्यमुपतिष्ठेत। अथर्ववेद ६/१०५ का सायणकृत विनियोग तथा कौशिकसूत्र ३१.२७ भी द्रष्टव्य है।

[१२] अथर्ववेद ५.२३.६; अथर्ववेद २.३२.१

अर्थात् अदृष्ट रोग-विषाणुओं को नष्ट करने वाला दर्शनीय सूर्य (पूर्वदिशा से) उदय हो रहा है। यह समस्त दृष्ट एवम् अदृष्ट सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट करता है। पुनश्च यह उदित होता हुआ सूर्य उन रोग-जीवाणुओं का भी नाश करे जो पृथिवी में अथवा इन्द्रियों में अन्दर छिपे हुए हैं, अस्त होता हुआ सूर्य भी अपनी किरणों से उन क्रिमियों का नाश करे। वेद के इन्हीं तथ्यों के आधार पर डॉ. फुन्दनलाल ने क्षयरोग की चिकित्सा के लिए सूर्य के प्रकाश को औषधि की अपेक्षा अधिक लाभकारी मानते हुए लिखा है - "क्षय-रोगी के लिए शुद्ध खुली ओषजन युक्त वायु तथा सूर्य का प्रकाश व उचित धूप जितनी लाभकारी है उतनी कोई भी खाने की औषधि नहीं।"[१३] इसीलिए भारतीय-परम्परा में सूर्य को आरोग्य का कारण मानते हुए कहा गया है - **आरोग्याय भास्करमिच्छेत्** । आज विश्व के अनेक देशों में जो धूपस्नान (sun bath) का प्रचलन है उसके मूल में सूर्य की रश्मियों में विद्यमान गुण ही है। जल का वैदिक-चिकित्सा-विज्ञान में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अथर्ववेद में भी जल को औषध बताते हुए भी उनके अमृतमय होने का कथन है।[१४] जलों में ऊर्जा होती है, उनका रस 'शिवतम' अर्थात् सर्वोत्तम कल्याणकारी होता है।[१५] एक मन्त्र में औषधियुक्त जल में समस्त सुखों के साधक अग्नि की स्थिति कही गई है।[१६] इसका आशय स्पष्ट करते हुए सायण लिखते हैं – **"और्ववैद्युतरूपेण अग्ने अप्सु अवस्थानं द्रष्टव्यम् । अनेन अतिशयवीर्यवत्त्वस्य प्रख्यापितत्वाद् अपां सर्वार्थसाधनं सामर्थ्यम् अस्तीत्युक्तं भवति"**[१७] सम्भवतः इसी आधार पर स्वामी शिवानन्दजी ने लिखा है "घर के स्नान की तुलना में नदी और तालाब का स्नान और भी अच्छा होता है। शास्त्र में समुद्र-स्नान की महिमा सबसे अधिक है क्योंकि जल में एक प्रकार की बिजली होने के कारण मनुष्य अधिक निरोगी एवं चैतन्यमय बन जाता है।[१८] वेद के कई मन्त्रों में जल से औषधि की याचना की गई है।[१९] जालाष-जल **(गोमूत्रफेनलक्षणं-सायण)** का औषधिवत् घाव एवम् उसके आस-पास के भाग को धोने के लिए प्रयोग करने का निर्देश किया गया है।[२०] सायण ने भी कौशिकसूत्र (३१/११) के आधार पर मुखरहित (फोड़ा-फुन्सी) आदि व्रणों को गो-मूत्र से धोने में इसका विनियोग किया है।[२१] अन्यत्र जल को रोगनाशक (अमीव चातन) बताते हुए क्षेत्रिय-रोग के

---

[१३] डॉ. फुन्दनलाल एम.डी. 'यज्ञचिकित्सा' पृ. २४२, सेठ हीराचन्द रतनचन्द टी.बी. सेनिटोरियम, जबलपुर (म.प्र.) प्रथम संस्करण ।

[१४] अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् १/४/४ तथा अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अथर्व० १/६/२

[१५] अथर्ववेद १/५/१ व २

[१६] अथर्ववेद १/३३/१ व ३

[१७] उपर्युक्त मन्त्रांशों पर सायणभाष्य द्रष्टव्य है।

[१८] स्वामी शिवानन्द 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज-प्रयाग, प्रथम संस्करण, पृ.९४

[१९] आपो याचामि भेषजम् । अथर्ववेद १/५/४ तथा आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे३मम । (अथर्ववेद १.६.३)

[२०] जालाषेणाभिषिंचत जालाषेणोपसिंचत । जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे । (अथर्ववेद ६.५७.२)

[२१] उपर्युक्त सूक्त ६.५७ का सायणकृत विनियोग ।

नाश के लिए जल-चिकित्सा का सङ्केत किया गया है।[२२] अथर्ववेद में जल को सर्वश्रेष्ठ वैद्य कहते हुए आँखों, एँड़ियों तथा पँजों के रोगों को दूर करने के लिए जल से प्रार्थना की गई है।[२३] हिमवान् पर्वतों से स्रवित होने वाली नदियों की जलधाराएँ हृदयरोग का शमन करने वाली वर्णित हैं।[२४] सायण ने इस सूक्त का विनियोग हृदयरोग, जलोदररोग तथा कामला-रोगों की चिकित्सा के लिए अनुप्रवाहित नदी का जल लाकर उसको वलीकतृणों से व्याधिकृत पुरुष का अवसिञ्चन तथा आचमन कराने में किया है।[२५] भावप्रकाश में भी हिमाम्बु को शीत, पित्तनाशक, भारी तथा वातकारी माना गया है।[२६] अथर्ववेद के भाष्यकार सातवलेकरजी ने आम रोगों के लिए जल-चिकित्सा का निर्देश मानते हुए अपनी टिप्पणी में जलचिकित्सा के कई प्रयोगों का उल्लेख किया है।[२७] सर्पविषनिवारण के लिए भी अथर्ववेद में जलचिकित्सा का निर्देश मिलता है।[२८] जलचिकित्सा के लिए विभिन्न स्थलों का जल प्रयोग किया जाता था। आथर्वणवैद्य विभिन्न जलों के विशिष्ट गुणों से परिचित थे, इसीलिए उन्होंने मरुस्थलीय, जलानुगत प्रदेशों के जल, खोदकर निकाले गए जल, कुम्भ में रखे गए जल, वर्षा का जल, झरनों के जल, प्रवाहशील जल तथा हिमाम्बु आदि जलों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है।[२९] भावप्रकाश के वारिवर्ग में इनके पृथक्-पृथक् गुणों का वर्णन किया गया है। हिमाम्बु की अपेक्षा उत्स्या-झरने का जल बिलकुल भिन्न गुण वाला, रुचिकर, कफनाशक, उद्दीपक, लघु, मधुर, कटुपाक, वातकारी तथा पित्तघ्न माना गया है।[३०] अथर्ववेद में जल को यक्ष्म-रोगों का नाश करने वाला कहा गया है।[३१] इसी आधार पर क्षय-रोग-विषेशज्ञ डॉ. फुन्दनलाल ने क्षयरोग में जल-चिकित्सा का भी प्रयोग करने का निर्देश किया है।[३२] आचार्य चरक ने भी दिव्य जल के षड्गुणत्व तथा स्थान व पात्र भेद से जल के विभिन्न गुणधर्मों का प्रतिपादन किया है।[३३] जलचिकित्सा केवल मनुष्यों को ही नहीं अपितु पशुओं को भी लाभकारी बताई

---

[२२] आप॒ इद्वा उ॑ भेष॒जीरापो॑ अमी॒वचा॑तनीः । आपो॒ विश्व॑स्य भेष॒जीस्तास्त्वा॑ मुंचन्तु क्षे॒त्रिया॑त् । अथर्ववेद ३.७.५ तथा ६.९१.३ भी देखें ।

[२३] अथर्ववेद ६.२४.२ यहाँ आँखों और पञ्जों का कथन सम्पूर्ण शरीर का सङ्केत करता है।

[२४] हि॒मव॑तः॒ प्रस्र॑वन्ति सिन्धौ॑ समह सङ्ग॒मः आपो॑ ह॒ मह्यं॑ तद्दे॒वीर्द॑दन्हृ॒दद्यो॑तभेष॒जम् । अथर्ववेद ६.२४.१ तथा शं त आपो हैमवतीः । अथर्ववेद १९.२.१

[२५] अथर्ववेद ६.२४ का सायणकृत विनियोग तथा समर्थन में उद्धृत कौशिकसूत्र ३०.१३

[२६] भावप्रकाश, वारिवर्ग २२

[२७] अथर्ववेद ६.५७.३ पर सातवलेकरभाष्य तथा इस सूक्त पर कृत टिप्पणी जिसमें उन्होंने ब्रह्मचर्यरक्षण (प्रमेह आदि निवारण), कब्जनिवारण, नेत्रदोष एवं बिच्छू आदि के विष को दूर करने के लिए जलचिकित्सा का उल्लेख किया है।

[२८] अही॑नां॒ सर्वे॑षां॒ वि॒षं परा॑ वहन्तु सिन्ध॑वः अथर्ववेद १०.४.२० एवं १०.४.४ व १९ भी देखें।

[२९] अथर्ववेद १.६.४ तथा १९.२.१ द्रष्टव्य है।

[३०] भावप्रकाश, वारिवर्ग पृ० ४१

[३१] ता अ॒पः शि॒वा अ॒पोऽय॑क्ष्मंकर॒णीर॒पः । यथै॒व तृ॑प्यते म॒यस्तास्त॒ आद॑त्त भेष॒जीः । अथर्ववेद १९.२.५

[३२] डॉ० फुन्दनलाल एम.डी. 'यज्ञचिकित्सा' (पूर्वोक्त) शीर्षक वैदिक जलचिकित्सा पृ. २०२ से २२१ तक

[३३] चरकसूत्र २७.१९०-२१०

गई है।[३४] सायण ने **'तथा गवां रोगोपशमनपुष्टिजननकर्मसु अनेनैव सूक्तेन अभिमन्त्रितसलवणं केवलं वा उदकं गाः पाययेत'** लिखकर पशुओं के रोगोपशमनार्थ जलचिकित्सा का विधान किया है।[३५] इसी जल-चिकित्सा के विभिन्न प्रयोगों को दृष्टिगत रखकर विविध स्नान (शीतस्नान, कटिस्नान, वाष्पस्नान आदि) आजकल प्रचलित हैं।

अथर्ववेद में अनेक रोगों के उपचार हेतु खुली स्वच्छ जलवायु का सेवन उपयोगी माना गया है, जिसमें पर्वतों एवं वनस्पतियों आदि से युक्त वनों में निवास करना तथा स्वच्छ वायु का सेवन करना सम्मिलित है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में हरिमाणम् अर्थात् हलीमक कामला-रोग के नाश के लिए तोतों (काष्ठशुक-सायण) से युक्त तथा सदा आरोहण करने वाली हरी-भरी वनस्पतियों वाले क्षेत्रों में निवास करने का निर्देश मिलता है।[३६] इसका समर्थन करते हुए स्वामी ब्रह्ममुनि ने स्पष्ट लिखा है कि हलीमक-कामला रोगी के पास तोते रहने चाहिए। उसे हरी दूब, घास में घुमाना-सैर करना और बैठना चाहिए। दारु हल्दी के जंगलों में उसका निवास कुछ समय तक करना अत्यन्त उपयोगी होगा। दारु हल्दी के जंगलों में उसका निवास कुछ समय तक करना अत्यन्त उपयोगी होगा। हरे रंग के तोते, हरी घास और दारु हल्दी के वृक्ष रोग के हरियाले, पीले, कामले पाण्डु रंगों का आकर्षण कर लेंगे; ऐसा यहाँ मन्त्र में सूचित किया गया है।[३७] इसका समर्थन एक अन्य मन्त्र से होता है जिसमें शीर्षक्ति और कासादि त्रिदोषजन्य रोगों की निवृत्ति के लिए वनस्पतियों से युक्त और पर्वतों पर निवास करने का उल्लेख किया गया है।[३८] इस पर वेदविद्वान् सातवलेकर का मत है कि **पर्वतान् सचताम्** पर्वतों पर रहकर तथा **वनस्पतीन् सचताम्** उचित वनौषधियों का सेवन करने का उपदेश इस मन्त्र में है। वनौषधियों का सेवन दो प्रकार से होता है, एक वृक्षादिकों के नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियों के रसादि उपयोग करना। पर्वतों के उच्च शिखरों पर निवास और वृक्षों के नीचे बैठना-उठना बड़ा आरोग्यदायक है। यह बातें हमने कई रोगियों पर युक्ति से अजमायी हैं और हमारे अनुभव से बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं।[३९] स्वामी ब्रह्ममुनि भी इसका समर्थन करते हैं।[४०] प्राकृतिक-चिकित्सा का एक अङ्ग खुली वायु का सेवन करना भी माना गया है। वायु को विश्वभेषज बताते हुए बलवर्द्धक तथा सर्वरोग-निवारक कहा गया है।[४१] सायण के मतानुसार एक मन्त्र में वायु की सहायता से बल प्राप्त करने तथा यक्ष्मारोग को दूर करने

---

[३४] अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः। अथर्ववेद १.४.४

[३५] अथर्व० १/४ का सायणकृत विनियोग समर्थन में उन्होंने कौशिकसूत्र (१९/१-३) को उद्धृत किया है।

[३६] शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं निदध्मसि। अथर्ववेद १.२२.४

[३७] स्वामी ब्रह्ममुनि 'अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या; दयानन्द संस्थान, नईदिल्ली, पृ. २७

[३८] अथर्ववेद १.१२.३ तथा इस पर सातवलेकरभाष्य।

[३९] श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत टिप्पणी' अथर्ववेद सुबोधभाष्य' भाग १, काण्ड १, पृ. ४५।

[४०] स्वामी ब्रह्ममुनि 'अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या' पृ. २८-३०

[४१] अथर्ववेद ४.१३.२ व ३

का उल्लेख है।[४२] अन्यत्र भी सविता एवं वायु से प्रार्थना है कि शरीर में बल तथा अयक्ष्मताति (अयक्ष्मम्) अर्थात् आरोग्य को धारण करावें।[४३] इससे स्पष्ट होता है कि यक्ष्मारोग की चिकित्सा में वायु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विषय में लन्दन के सुप्रसिद्ध डॉ. ई. हैरिस रोडक एम.डी. का निम्नलिखित कथन **The open air treatment is sanatoria, has done a great deal for many cases of tuberculosis (vede mecum page 283 & 284)**[४४] डॉ. फुन्दनलाल ने भी क्षयरोगी के लिए शुद्ध, खुली ऑक्सीजनयुक्त वायु को तथा सूर्य की धूप को खाने की औषधि की अपेक्षा अधिक लाभकारी माना है।[४५] अथर्ववेद में जहाँ आरोग्य लाभ हेतु स्वच्छ एवं ताजी वायु में श्वास लेने का विधान किया गया है। वहीं आवश्यकता पड़ने पर श्वास में अवरोध होने या क्षीण होने की स्थिति में कृत्रिम श्वास देने का भी सङ्केत किया गया है। एक मन्त्र में कहा गया है कि जैसे उत्पन्न हुई अग्नि को फूँक मारकर प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार तुझ अल्पप्राण वाले को सभी प्राणियों के प्राणों से जोड़कर प्रभूत प्राण करता हूँ।[४६] अर्थात् मुख से फूँककर कृत्रिम श्वास देता हूँ । इसकी पुष्टि एक अन्य मन्त्र से होती है जिसमें कहा गया है- **अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि । कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः।**[४७]

अर्थात् यह पुरुष अपनी पूर्ण आयु तक जीवित रहे, मरे नहीं; इसको कृत्रिम श्वास फूँककर जीवन देते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से जलवायु-परिवर्तन तथा वायु-चिकित्सा आदि के कृत्रिम प्रयोगों की पुष्टि होती है।

अथर्ववेद में अग्नि को आयु का कारक माना गया है। अनेक मन्त्रों में अग्नि से आयु की प्रार्थना करते हुए कहा गया है **'आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो'**, **'इमर्मग्न आयुषे वर्चसे नय'** **'....आयुष्यमस्मा अग्निः' 'आयुरस्मै धेहि जातवेदः'** ।[४८] अग्नि प्राणों को धारण कराता है, जिससे रोगी पाप व रोगों से मुक्त होकर आयु को प्राप्त करता है।[४९] अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अग्नि से रोगों की मुक्ति किस प्रकार हो सकती है ? इसके दो प्रकार हो सकते हैं। एक तो शीतादि एवं फोड़ा, सूजन आदि कतिपय रोगों की चिकित्सा के लिए सीधा अग्नि के द्वारा सेक करना। दूसरा आराधना यथा अग्नि में विविध द्रव्यों की आहुति-रूप यज्ञ द्वारा अग्नि की उपासना । इसमें विविध देवताओं के लिए अग्नि में हवि के साथ

---

[४२] अथर्ववेद ४.१३.५ पर सायणभाष्य 'अपि च उग्रं उद्गुर्ण दक्षम् समृद्धिकरबलं ते तव आभार्षम् आहार्षम्.....दक्षं ते अन्य आवातु (२) इति वायुप्रार्थनया तत्सकाशात् आनेषम् । तथा यक्ष्मं रोगं ते तव सकाशात् परासुवामि पराङ्मुखं प्रेरयामि। द्रष्टव्य है।

[४३] ...सवितोत वायुस्तनु दक्षमा सुवतां सुशेवम् अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ०....। अथर्ववेद ४/२५/५

[४४] उद्धृत द्वारा डॉ. फुन्दनलाल एम.डी. 'यज्ञ चिकित्सा' पूर्वोक्त पृ. २४५

[४५] उक्त पृ. २४२

[४६] प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि । अथर्ववेद ८.२.४ तथा इस पर सायणभाष्य ।

[४७] अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि। अथर्ववेद ८.२.५ पं. श्रीकण्ठशास्त्रीकृत सनातनभाष्य द्रष्टव्य है।

[४८] अथर्ववेद २.१३.१, २.२८.५, २.२९.१ व २

[४९] अग्निः प्राणान्त्संदधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः। व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ अथर्ववेद ३.३१.६

विविध औषधियों का हवन किया जाता है तथा रोगनाशपूर्वक आरोग्य-लाभ के लिए प्रार्थना की जाती है। इस उपचार-पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इससे अनेक असाध्य रोगी तो रोगमुक्त हो ही जाते हैं, अन्य स्वस्थ लोग भी आरोग्य-लाभ प्राप्त करते हैं। इस यज्ञचिकित्सा के द्वारा राजयक्ष्मा जैसे असाध्य रोग तथा जिनका निदान नहीं हो सकता ऐसे अज्ञात रोग दोनों का ही उपचार सम्भव माना गया है-

मुञ्चामि॑ त्वा ह॒विषा॒ जीव॑नाय॒ कम॑ज्ञातय॒क्ष्मादु॒त रा॑जय॒क्ष्मात् ।
ग्राहि॑र्ज॒ग्राह॒ यद्ये॒तदे॑नं॒ तस्या॑ इन्द्राग्नी॒ प्र मु॑मुक्तमेनम् ॥[५०]

अर्थात् हे रोगी ! तुझे इस हवन के द्वारा अज्ञात रोगों तथा राजयक्ष्मा से मुक्त करता हूँ । हे अग्नि व इन्द्र ! आप दोनों इस रोगी को जकड लेने वाले ग्राही रोग से पूर्णरूप से मुक्त कर दें । जल के साथ अग्नि से कल्याणकारी होने की तथा रोगों से मुक्त कराने की प्रार्थनाएँ अथर्ववेद में मिलती हैं।[५१] यज्ञचिकित्सा के द्वारा सङ्क्रामक-रोगों का प्रतिरक्षण करते हुए कहा गया है-

वि॒द्म वै ते॑ जायन्य॒ जान॑ं यतो॑ जायान्य॒ जार्य॑से।
क॒थं ह॒ तत्र॒ त्वं ह॑नो॒ यस्य॑ कृ॒ण्मो ह॒विर्गृ॒हे।[५२]

अर्थात् हे जायान्य ! (राजयक्ष्मा-सायण) रोग तेरे कारणरूप निदान को हम जानते हैं। जहाँ से तू उत्पन्न होता है। जिसके घर में हम रोगनाशार्थ हवन करते हैं; वहाँ तू किस प्रकार हानि पहुँचा सकता है ? यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जायान्यरोग को सङ्क्रामक रोग मानते हुए अथर्ववेद में कहा गया है-

प॒क्षी जा॒यान्यः॑ पतति॒ स आवि॑शति॒ पूरु॑षम्।[५३]

अर्थात् यह क्षयरोग पंख वाला होकर सर्वत्र जाता है अथवा फैलता है और पुरुष में प्रविष्ट हो जाता है। यज्ञ के द्वारा रोग के सूक्ष्म विषाणुओं का नाश होने से रोग का सङ्क्रमण रुक जाता है। अग्नि में कतिपय काष्ठ विशेष की समिधाओं से किया गया हवन पिशाचों व तज्जन्य रोगों का नाशक होता है।[५४] यज्ञचिकित्सा का समर्थन करते हुए अथर्ववेदीय गोपथब्राह्मण में भी ऋतुसन्धियों में होने वाली व्याधियों के नाशार्थ भैषज-यज्ञ का विधान किया गया है।[५५] प्रसिद्ध आयुर्वेदवेत्ता चरक ने भी राजयक्ष्मादि रोगों के नाशार्थ आरोग्यार्थी पुरुष के लिए वेदविहित यज्ञ करने का निर्देश किया है।[५६] अथर्ववेद के पूर्वोक्त सन्दर्भों के आधार पर प्रयोगपूर्वक श्री डॉ० फुन्दनलाल ने यक्ष्मानाशक यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ, यज्ञ-सामग्री, यज्ञप्रक्रिया तथा प्रयोक्तव्य मन्त्रों आदि का निर्देश किया है।[५७]

---

[५०] अथर्ववेद ३.११.१
[५१] अथर्ववेद २.१०.२
[५२] अथर्ववेद ७.८१(७६).१
[५३] अथर्ववेद ७.८०(७६).४
[५४] ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिधः॑ पिशाच॒जम्भ॑नीः । अथर्ववेद ५.२९.१४
[५५] भैषज्य यज्ञा वा एते तस्मादतु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते । ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते। गोपथब्राह्मण उ.प्र. ९/१९
[५६] चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ८/१८३ तथा सूत्रस्थान ८/३१
[५७] डॉ. फुन्दनलाल एम.डी. 'यज्ञचिकित्सा' (पूर्वोक्त) भाग २, पृ. १६५ से ३२८

भूमि (मिट्टी) का भी चिकित्सा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। अथर्ववेद में मृत्तिका के अनेक प्रयोग वर्णित हैं। खेत की मिट्टी फोड़े को पकाकर उसके अन्दर दूषित रक्त आदि को निकालकर ठीक करने वाली बताई गयी है।[५८] सायण ने भी अपने भाष्य में '.....**वल्मीकमृत्तिकारूपम् औषधम् आस्रावस्येत्यादि पूर्ववत्', पुनश्च 'अरुःस्रावणम् अरुषो व्रणस्य पाचनं पृथिव्याः केदारादिक्षेत्ररूपायाः सकाशात् अधि उद्भृतम् उद्भृतम् यद् इदं महत् औषधं क्षेत्रमृत्तिकारूपम् तत् आस्रावस्येत्यादि पूर्ववत् अनीनशत्'** लिखकर इसका समर्थन किया है।[५९] अन्यत्र उपजीका बाँबीं की मिट्टी विष एवम् आस्राव-रोग की नाशक बताई गई है।[६०] आचार्यसायण ने भी अपने भाष्य में '.....**सा वल्मीकमृत्तिका विषम् स्थावरजङ्गमोद्भवम् अरसम् रसरहितं निर्वीर्यं चकर्ष आकर्षतु'** लिखकर इसका समर्थन किया है।[६१] कौशिकसूत्र भी **'देवा अदुः (अथर्व ६/१००) इति वल्मीकेन बन्धनपायनाचमनप्रदेहनम् उदकेन'** कहकर स्थावर व जङ्गम विष के निवारण हेतु इसका विनियोग करता है। आचार्यसायण ने भी तदनुसार ही विषनिवारणार्थ इसका विनियोग किया है।[६२]

जीवन में संयम व सदाचरण का अत्यधिक महत्त्व है। अथर्ववेद में कहा गया है कि देवताओं ने ब्रह्मचर्य के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त की। चूँकि संयमी, ब्रह्मचारी व्यक्ति में जीवनीशक्ति, रोग- प्रतिरोधक क्षमता, आश्चर्यजनक-रूप से विद्यमान रहती है अतः उसका अस्वस्थ होना तो दूर वह मृत्यु (रोगादिजन्य अपमृत्यु) पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। सम्भवतः इसीलिये आयुर्वेद के अनेक आचार्यों ने भी जीवन में आरोग्य की दृष्टि से संयम, सदाचरण व ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ अथर्ववेद में औषधि, शल्य, मन्त्र आदि चिकित्सा-विधियाँ प्राप्त होती हैं। वहीं प्राकृतिक-चिकित्सा के विषय में भी पर्याप्त सूक्ष्म विवेचन किया गया है। आधुनिक युग में भी प्राकृतिक-चिकित्सा को पर्याप्त सुरक्षित तथा सहायक चिकित्सा-पद्धति के रूप में स्वीकार किया जाता है और इसका प्रचलन दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

डॉ. कैलाशनाथ तिवारी
पूर्व प्राचार्य
श्रीमती लाडदेवी शर्मा पञ्चोली संस्कृत महाविद्यालय
बरून्दनी, भीलवाड़ा (राजस्थान)

[५८] अथर्ववेद २.३.३ व ५
[५९] उपर्युक्त पर सायणभाष्य
[६०] अथर्ववेद ६.१००.२ तथा २.३.४
[६१] उपर्युक्त पर सायणभाष्य
[६२] कौशिकसूत्र ३१/२६ व अथर्ववेद ६.१०० का सायणकृत विनियोग